भारतीय संस्कृतिप्रणीत अर्थनीतिः पं0 दीनदयाल उपाध्याय

डॉ0 प्रवेश कुमारी

Email: pravesh019@rediffmail.com

सारांश

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् उसके स्वरूप को लेकर हमारे सामने महत्वपूर्ण चुनौती थी, अंग्रेजों के जाने के बाद देश का स्वरूप क्या होगा। स्वतंत्रता के बाद राजनैतिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में पश्चिम का अनुकरण किया गया। इस धारणा से नीति निर्माता भी मुक्त नहीं हो पाए। पं0 दीनदयाल उपाध्याय एक ऐसे दल के नेता थे जो मूलतः संस्कृतिवादी था। पश्चिम के मार्ग पर नहीं चलना चाहता था। उन्होंने अपने दल के सांस्कृतिक आग्रहों के अनुकुल अर्थनीति को विकसित किया। उपाध्याय अर्थनीति के क्षेत्र में पाश्चात्य नकल को बुरा मानते थे। हमारी ओर पाश्चात्य परिस्थितियों में बहुत फर्क है। अतः हमे अर्थनीति का भारतीयकरण यहाँ की संस्कृति के आधार पर करना होगा। अर्थ के अभाव एवं प्रभाव दोनों को मिटाकर समाज में सम्पत्ति की योग्य व्यवस्था निर्मित करने को भारतीय संस्कृति में अर्थायाम कहा गया है।

मुख्य शब्दः *समाजवाद, पूंजीवाद, लोकतंत्र, संस्कृति, विकेन्द्रीकरण*

प्रस्तावना

एकात्म मानववाद के प्रवर्तक पं0 दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक चिंतन में राष्ट्र हेतु अर्थनीति महत्वपूर्ण रही हैं। स्वतंत्रता के बाद भारत की अर्थनीति पर राष्ट्रवादी चिंतन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भारत की स्वतंत्रता के बाद हमारे सामने उसके स्वरूप की महत्वपूर्ण चुनौती थी कि अंग्रेजों के जाने के बाद देश का स्वरूप क्या होगा। देश के सभी आन्दोलनों और प्रयासों का एक ही उद्देश्य था स्वतन्त्रता की प्राप्ति। किन्तु स्वतंत्रता के बाद हमारे दृष्टिकोण में अन्तर आया और देश की आर्थिक समृद्धि हमारा लक्ष्य हो गया। राजनैतिक दलों के कार्यक्रम एवं नीतियां इस विषय पर केन्द्रित हो गईं। परन्तु भारतीय अर्थनीति के निर्धारण में पूंजीवादी एवं समाजवादी दो ध्रुवों पर चर्चा चली। स्वतन्त्रता के बाद चाहे वह राजनैतिक क्षेत्र हो या सामाजिक क्षेत्र पश्चिमी चिन्तकों को आदर्श एवं एक साधन मानकर उसका अंधानुकरण हमने किया। आर्थिक क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। इस धारणा से सम्भवतः नीति निर्माता भी मुक्त नहीं हो पाए। इसका परिणाम हुआ कि स्वतन्त्रता के बाद कांग्रेस पश्चिम की नीतियों के सहारे देश की दशा एवं दिशा तय कर रही थी। पं0 दीनदयाल उपाध्याय एक ऐसे दल के नेता थे, जो मूलतः संस्कृतिवादी था व भौतिक जीवन के बने बनाए पाश्चात्य मार्गो पर नहीं चलना चाहता

था। आधुनिक लोककल्याणकारी राज्य की कल्पना के साथ बिना आर्थिक नीति के कोई राजनीतिक दल वर्चस्व प्राप्त नहीं कर सकता। पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने दल का नेतृत्व संभाला तो उन्होंने अपने दल के सांस्कृतिक आग्रहों के अनुकूल अर्थनीति को विकसित करने का प्रयास किया।

पं0 उपाध्याय का मानना था कि विश्व आज भीषण सभ्रम के चौराहे पर खड़ा है। समृद्ध एवं खुशी जीवन के लिए लालायित समाज कर्तव्य विमुख हो गया है। इस चक्रव्यूह से उसे छुड़ाने वाला कोई तीसरा विकल्प हो सकता है? दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं कि भारतीय संस्कृति के एकात्म मानव दर्शन के अन्तर्गत एकात्म अर्थनीति ही ऐसा तीसरा विकल्प बन सकता है।

भारतीय संस्कृति प्रणीत अर्थनीति

पं0 दीनदयाल उपाध्याय अर्थनीति के क्षेत्र में पाश्चात्य नकल को बुरा मानते थे। हमारी और पाश्चात्य परिस्थितियों में बहुत फर्क है, अतः हमें अपनी अर्थनीति का भारतीयकरण करना होगा। अपने इस वक्तव्य को विवेचित करते हुए दीनदयाल उपाध्याय ने लिखा है–

''देश का दारिद्रय दूर होना चाहिए, इसमें दो मत नहीं; किन्तु प्रश्न यह है कि गरीबी कैसे दूर हो? हम अमेरिका के मार्ग पर चले या रूस के मार्ग को अपनाए अथवा यूरोपीय देशों का अनुकरण करें? हमें इस बात को समझना होगा कि इन देशों की अर्थव्यवस्था में कितना ही भेद क्यों न हो इनमें एक मौलिक साम्य है। सभी ने मशीनों को ही आर्थिक प्रगति का साधन माना है। मशीन का सर्वप्रथम गुण है, कम मनुष्यों द्वारा अधिकतम उत्पादन करवाना। परिणामतः इन देशों को स्वदेश में बढ़ते हुए उत्पादन को बेचने के लिए विदेशों में बाजार ढूंढने पड़े। साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद इसी का स्वभाविक परिणाम बना। इस राज्य विस्तार का स्वरूप चाहे भिन्न–भिन्न हो किन्तु क्या रूस हो, क्या अमेरिका यहाँ तक कि इंग्लैण्ड को भी इसी मार्ग का अवलंबन करना पड़ा है। हमें स्वीकार करना होगा कि भारत की आर्थिक प्रगति का रास्ता मशीन का रास्ता नहीं है। कुटीर उद्योगों को भारतीय अर्थनीति का आधार मानकर विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का विकास करने से ही देश की आर्थिक प्रगति संभव है।''

पं0 दीनदयान उपाध्याय समंग्रतावादी दार्शनिक होने के कारण उन लोगों से असहमत थे, जो जीवन के किसी विशिष्ट आयाम को जीवन की समग्रता का नियामक मान बैठते हैं। जिसमें जीवन में अन्य पहलुओं की उपेक्षा होती है। इस सम्बन्ध में पं0 उपाध्याय लिखते हैं–

''भारतीय जनसंघ के पास स्पष्ट आर्थिक कार्यक्रम है किन्तु उसका स्थान सम्पूर्ण कार्यक्रम में उतना ही है जितना भारतीय संस्कृति में अर्थ का। पाश्चात्य संस्कृति भौतिकवादी होने के कारण अर्थप्रधान है। हम भौतिकवाद एवं अध्यात्मवाद दोनों का समन्वय करना चाहते हैं। अतः यह निश्चित है कि जनसंघ उन अर्थशास्त्रियों एवं दलों से, जो अर्थ के सामने जीवन के प्रत्येक मूल्य की उपेक्षा करके चलना चाहते हैं, इस मामले में सदैव पीछे रहेगा। जनसंघ हृदय, मस्तिष्क और शरीर तीनों का सम्मिलित विचार करता है। इसी कारण कुछ लोग जनसंघ पर यह आरोप लगाते हैं कि जनसंघ आध्यात्मिकता की उपेक्षा करता है, महर्षि अरविन्द आदि पुरूषों की भाषा नहीं बोल पाता। हम दोनों ही प्रकार के आरोपों का स्वागत करते हैं और इतना ही कहना चाहते

हैं कि अर्थ समाज की धारणा के लिए आवश्यक है। जितनी मात्रा से व्यक्ति अपना भरण पोषण करके अन्य श्रेष्ठ मूल्यों की प्राप्ति का प्रयास कर सके उतने को ही हमने अपने कार्यक्रम में स्थान दिया है।''

•अर्थायाम

पं0 दीनदयाल उपाध्याय ने अपने आर्थिक चिन्तन को व्याख्यायित करने के लिए ''भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा'' पुस्तक लिखी। पुस्तक में अर्थनीति की विवेचना करते हुए उन्होंने 'एकात्म मानव' के अर्थायाम की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। समाज के अर्थ के अभाव एवं प्रभाव दोनों को मिटाकर उसकी समुचित व्यवस्था करने को अर्थायाम कहा गया है। अर्थ का जीवन में क्या स्थान है इस सम्बन्ध में योग्य एवं सुस्पष्ट धारणा और अर्थ के स्वामित्व, उत्पादन, विवरण तथा उपभोग की समुचित व्यवस्था अर्थायाम के प्रमुख अंग हैं।

• भारतीय सस्कृति में अर्थ

भारतीय संस्कृति में धर्म को आधारभूत पुरूषार्थ माना गया है। 'सुखस्य मूलम् धर्मः। धर्मस्य मूलअर्थं।' चाणक्य के इस कथन के अनुसार अर्थ के बिना धर्म नहीं टिकता। 1953 के लिखे अपने प्रथम अर्थनीति प्रलेख में उपाध्याय लिखते हैं–

''भारतीय ढंग सदा ही धर्म का ढंग रहा है और धर्म के इस ढंग पर ही आर्थिक नवनिर्माण के नक्शे भी तैयार करने की जरूरत है। धर्म की वेदों से व्याख्या हम लेते है जिसमें 12 लक्षण गिनाए गए हैं। इसमें धर्म का आद्यलक्षण सबसे महत्वपूर्ण है, वह है क्षम। क्षम को धर्म का पहला लक्षण बताया गया है। क्षम की महत्ता का ज्ञान मार्क्स और एंजिल्स के जन्म तक रूका नहीं रहा। वह अति पुरातन काल में सहज अनुभूति से हमने मानवता को दे दिया था। क्षम करना मूलभूत कर्तव्य ही माना है। क्षम का अधिकार मनुष्य का संवैधानिक अधिकार है। राज्य का यह पहला कर्तव्य है कि वह प्रत्येक नागरिक को उसकी योग्यता व क्षमता के अनुसार काम का अवसर दे। इन अवसरों में किसी प्रकार का भेदभाव न जाति का न लिंग का होने दे। राष्ट्र के आर्थिक पुनः निर्माण की जो भी योजना बनाई जाए, उसका उद्देश्य सभी व्यक्तियों को काम दिलाना होना चाहिए।'' इसी आधार पर पं0 उपाध्याय पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण के संदर्भ में सदैव यह आग्रह करते रहे कि हमें अपना आयोजन लक्ष्य घोषित करना चाहिए 'सबको काम'।

• सम्पत्ति का स्वामित्व

सम्पत्ति के स्वामित्व का विचार अर्थायाम के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। सम्पत्ति किसकी है यह आदिकाल का प्रश्न है। व्यक्तिवाद एवं समाजवाद के विचारात्मक संघर्ष ने इसे एक नवीन आयाम दे दिया है। सम्पत्ति पर समाज का अधिकार या व्यक्ति का। उपाध्याय सम्पत्ति के स्वामित्व के लिए समाज के द्वन्द्व को गलत मानते हैं। इस प्रश्न का सहज उत्तर देते है। हर व्यक्ति समाज का प्रतिनिधि है। अतः वह समाज की सम्पत्ति के एक हिस्से का न्यासी या संरक्षक हैं उपाध्याय व्यक्ति को श्रीविहीन करने के खिलाफ है। व्यक्ति स्वयं समाज का अंग है। अतः वह स्वयं समाज की धरोवर हैं। इसलिए सम्पत्ति पर अबोध अधिकार समाज का है, लेकिन वे समाज को एकमात्र प्रतिनिधि संस्था मानने को तैयार नहीं हैं। यही कारण है कि निजी सम्पत्ति के

अधिकार के नाम पर समाज के कुछ लोगों के हाथ में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण या सम्पत्ति के सामाजिक अधिकार के नाम पर राज्य में सम्पत्ति के केन्द्रीकरण को वे समान रूप से गलत मानते है। उपाध्याय सम्पत्ति पर न तो व्यक्ति का अमर्यादित स्वामित्व स्वीकार करते हैं तथा न ही अमर्यादित राज्यधिकार। वे स्वामित्व के केन्द्रीकरण के खिलाफ है अतः विकेन्द्रित राज्य व विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के समर्थक है।

स्वामित्व के सवाल को जिस प्रकार पूंजीवादी व समाजवादी लोग प्रस्तुत करते हैं उसे वे विभक्त दृष्टि का परिचाक मानते है। किसी भी वस्तु के ऊपर मेरा स्वामित्व होने का मतलब यह नहीं है कि मैं उसका जैसा चाहे प्रयोग करूँ। स्वामित्व एवं उपभोग की दोनों भावनाओं को जब तक अलग करके नहीं देखेंगे, तब तक हम होने वाली बुराइयों को नहीं रोक पायेंगे। जिस वस्तु का मैं स्वामी हूँ उसका उपभोग समाज हित में करने का अधिकार है। यह विचार प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख होना चाहिए। राज्य भी यदि स्वामित्व ग्रहण कर लेता है तो वह व्यक्तियों के द्वारा ही व्यवस्था करता है। यह समाज हित में कार्य करने वाले लोगों का अभाव रहा तो यह व्यवस्था भी ठीक प्रकार से काम नहीं कर पायेगी। उनका मत है कि स्वामित्व का अधिकार वास्तव में निश्चित मर्यादाओं और निश्चित उद्देश्यों के लिए किसी वस्तु के उपभोग का अधिकार है कि जीवन के लिए जितना आवश्यक है उतना ही उपभोग करना चाहिए। बाकी पर कोई लोभ लालच नहीं करना चाहिए। इस बिन्दु पर महात्मा गांधी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त पं0 दीनदयाल उपाध्याय की अर्थनीति के संकेतों से मिलता जुलता है।

• आर्थिक लोकतंत्र

स्वतन्त्रता मानव और राष्ट्र की स्वाभाविक आकांक्षा होती है जनता की आकांक्षाओं की प्रतिश्ठा के लिए व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन कर सके, इसके लिए स्वतन्त्रता के साथ ही लोकतंत्र भी आवश्यक होता हैं केवल राजनैतिक क्षेत्र में नहीं अपितु आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र में भी। लोकतंत्र की भाँति स्वतन्त्रता भी अविभाज्य होती है। राजनैतिक स्वतन्त्रता के बिना सामाजिक एवं आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए उपाध्याय कहते हैं कि इसके लिए लोकतंत्र एवं स्वतन्त्रता का अर्थायाम के द्वारा संरक्षण हो ऐसी अर्थव्यवस्था खड़ी करना नितान्त आवश्यक है।

दीनदयाल उपाध्याय लोकतंत्र को केवल राजनीतिक जीवन का आयाम नहीं मानते उनका मत है कि प्रत्येक को वोट जैसे राजनीतिक प्रजातंत्र का निकष है, वैसे ही प्रत्येक को काम आर्थिक प्रजातंत्र का मापदंड है। प्रत्येक को काम के अधिकार की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि काम प्रथम तो जीवकोपार्जक हो तथा दूसरे व्यक्ति को उसे चुनने की स्वतन्त्रता हो। यदि काम के बदले में राष्ट्रीय आय का न्यायोचित भाग नहीं मिलता तो उसके काम की गिनती बेगार में होगी। इस दृष्टि से न्यूनतम वेतन, न्यायोचित वितरण तथा किसी न किसी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था आवश्यक हो जाती है। उपाध्याय आगे कहते हैं–

''जैसे बेगार हमारी दृष्टि में काम नहीं है वैसे ही व्यक्ति के द्वारा काम में लगे रहते हुए भी अपनी शक्तिभर उत्पादन न कर सकना काम नहीं है। अंडर इंपलाइमैंट भी एक प्रकार की

बेगारी है।''

आज का युग प्रजातंत्र की ओर बढ़ रहा है। राजनीति के क्षेत्र में यह प्रजातंत्र का भाव कुछ स्पष्ट होकर आया है। अब आर्थिक क्षेत्र में भी इसी प्रजातंत्र का उदय हो रहा है। आर्थिक लोकतंत्र के लिए आवश्यक है स्वयं सेवी क्षेत्र का विकास करना। इसके लिए विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था जरूरी है। राजनैतिक शक्ति का प्रजातंत्र में विकेन्द्रीकरण करके जिस प्रकार शासन की संस्था का निर्माण किया जाता है उसी प्रकार आर्थिक शक्ति का भी प्रजा में विकेन्द्रिकरण करके अर्थव्यवस्था का निर्माण और संचालन करना चाहिए। जिस प्रकार राजनैतिक प्रजातंत्र में व्यक्ति को अपनी रचनात्मक क्षमता को व्यक्त करने का पूरा अवसर मिलता है ठीक उसी प्रकार आर्थिक प्रजातंत्र में भी व्यक्ति की क्षमता कुचलकर रख देने का नहीं अपितु उसको व्यक्त होने का पूरा अवसर प्रत्येक अवस्था में मिलना चाहिए।

• विकेन्दित अर्थव्यवस्था

लोकतंत्र में शक्ति का केन्द्रीकरण मानव स्वतंत्रता के लिए हानिकारक है। राष्ट्रीय एकात्मकता को किंचित भी ठेस न पहुंचाते हुए राजनैतिक एवं आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण आवश्यक हैं पूंजीवाद एवं समाजवाद दोनों की परिणति सम्पत्ति के विशाल केन्द्रीयकरण एवं एकाधिकार में होती हैं। अन्तर केवल इतना है कि एक का स्वामित्व निजी पूंजीपतियों के पास है दूसरे का शासन के पास दोनों ही व्यवस्थाओं में मानव की उपेक्षा की गई है। अतः आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था ही भारतीय परिस्थितियों में हमारे लिए उपादेय है। अतः उपाध्याय कहते हैं–

''विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था चाहिए, स्वयंसेवी क्षेत्र का विकास करना होगा। यह क्षेत्र जितना बड़ा होगा उतना ही मनुश्य आगे बढ़ सकेगा। प्रत्येक मनुष्य की व्यक्तिगत आवश्यकताओं और विशेषताओं पर विचार करके उसके काम देने पर उसके गुणों का विकास हो सकता हैं यह विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था भारत ही संसार को दे सकता है।'' हम नए सिरे से आर्थिक विकास कर रहे हैं। यहाँ विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था खड़ी करने में सुविधा हो सकती है। यदि एक बार भारी उद्योगों का निर्माण हो गया तो उसे समाप्त करने की बात सोचने में अनेकों व्यवहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। अतः राष्ट्र निर्माण की इस प्रारम्भिक बेला में अपने कदम आगे बढ़ाते समय हम अच्छी प्रकार से विचार करें।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय के मतानुसार बड़े उद्योगों का सर्वदा निषेध विकेन्द्रीकरण का हेतु नहीं। वे बड़े उद्योगों को छोटे उद्योगों पर अवलम्बित करना चाहते हैं। ''उत्पादन मुख्यतः दो प्रकार की वस्तुओं का होता है। एक उपभोग वस्तुओं का और दूसरा उत्पादन वस्तुओं का। उपाध्याय कहते हैं कि उत्पादक वस्तुएं बड़े उद्योग तैयार करें तथा उपभोग वस्तुए छोटे उद्योगों द्वारा बनाई जाए। दूसरा उपभोग वस्तु उत्पादन के काम में आने वाली वस्तुओं को अलग–अलग छोटे पैमाने पर तैयार करना तथा एकत्रीकरण बड़े कारखानों में करना। यदि उपर्युक्त दो वर्गों में उद्योगों को स्थापित किया जाए तो प्रतिस्पर्धी उद्योगों का क्षेत्र सीमित हो जायेगा।

विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था में छोटे उद्योग अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड होंगे तो भी आधुनिक

उत्पादन व्यवस्था में मानवीय आवश्यकताएं ऐसी है कि बड़े उद्योगों की अवहेलना नहीं की जा सकती। अतः उपाध्याय बड़े उद्योगों की अनिवार्यता को भी स्वीकार करते है। विकेन्द्रीकरण को उपाध्याय अर्थव्यवस्था का केन्द्रीय बिन्दु मानते है इससे ही हम सामाजिक न्याय, स्वदेशी एवं स्वावलंबन प्राप्त कर सकते हैं।

• संतुलित अर्थ संस्कृति

प्राकृतिक साधन सामग्री और अर्थव्यवस्था की सीमाओं का विचार करते हुए पं0 उपाध्याय कहते हैं कि ''मनुष्य के आर्थिक जीवन को उत्पादन, वितरण एवं उपभोग ये तीनों क्रियाएं रूपायित करती हैं। उपाध्याय की अर्थसंस्कृति का सूत्र है अपरमात्रिक उत्पादन, समान वितरण, संयमित उपभोग। उत्पादन की मर्यादा में मुख्यतः ये बातें शामिल की गई हैं–

उत्पादन

उपभोग की आवष्यकता एवं अपेक्षित बचत के लिए पर्याप्त उत्पादन को अपरमात्रिक उत्पादन कहते हैं। यह उत्पादन की मर्यादा हैं।

ऐसा उत्पादन जिसमें उत्पादन की खपत के लिए बाजार खोजना पड़े, लोगों में उपभोग की लालसा जगानी पड़े वह सामाजिक संस्कारों में असन्तुलन उत्पन्न करता है।

उत्पादन के जिन साधनों का हम उपयोग कर नई वस्तुओं का निर्माण करते है, उनके साधन सीमित हैं परन्तु मनुष्य ने इन साधनों का मनमाने ढंग से प्रयोग किया है। इस सीमित साधन सम्पदा को मनमाने ढंग से खर्च करना कदापि बुद्धिमानी नहीं होगी। प्रकृति में एक संतुलन हुआ करता हैं, प्रकृति अपने ढंग से इसमें होने वाली क्षति को पूरा करती रहती है। परन्तु मानव इतनी तीव्र गति से उसका विनाश कर रहा है कि उस क्षेत्र के कारण हुई क्षति प्रकृति पूरा ही कर पा रही है और न उसका संतुलन टिक पा रहा है उपाध्याय कहते हैं कि प्रकृति से हमें उतनी ही साधन सामग्री लेनी चाहिए कि उसके कारण होने वाली क्षति को प्रकृति स्वयं अपने आप पूरा कर सके।

वितरण

अधिकतम व न्यूनतम आय का नियत अनुमान नहीं बिगड़ना चाहिए।

वितरण निकाय, उत्पादक एवं उपभोक्ता के साथ संतुलनकारी हो। अतिरिक्त मूल्य उपभोक्ता के लिए शोषणकारी न हो तथा उत्पादक एवं वितरण अतिरिक्त मूल्य का न्यायसंगत बंटवारा हो।

वितरण इस प्रकार का होना चाहिए कि रोटी, कपड़ा, मकान, पढ़ाई और दवाई ये पांच आवश्यकताएं प्रत्येक व्यक्ति की पूरी होनी चाहिए।

उपभोग

संयमित उपभोग के विषय में उपाध्याय कहते है हमारी अर्थव्यवस्था का उद्देश्य असीम भोग नहीं संयमित उपभोग होना चाहिए। संयमित उपभोग से तात्पर्य स्वस्थ शरीर की

आवश्यकताओं के अनुरूप उपभोग आवश्यकता से अधिक उपभोग षारीरिक एवं सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से घातक हैं।

उत्पादन एवं उपभोग के बीच संयम और देशहित का ध्यान रखना आवश्यक है। देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए संयमित उपभोग की नीति पर चलना चाहिए। अर्द्धविकसित देश निरन्तर क्षण के चक्र में इसलिए फंसते है कि इस उद्देश्य की वे उपेक्षा करते हैं। आर्थिक अभाव तथा प्रभाव दोनों ही उपभोग को असंयमित करते है। अतः अर्थव्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जो जीवन के अर्थायाम की संपूर्ति करे।

निष्कर्ष

भारतीय अर्थव्यवस्था आज जिस बिन्दु पर है वहाँ आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न निराशा की खाइयाँ हैं। उसका कारण पूंजीवाद एवं समाजवाद का भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव है। दोनों का परिणाम सम्पत्ति का विशाल केन्द्रीयकरण एवं एकाधिकार में हो जाता है दोनों ही व्यवस्थाओं में मानव की उपेक्षा की गयी है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय का चिंतन आज के समय का आह्वान है। पं0 उपाध्याय का चिंतन समग्रतावादी है। निपट आर्थिक दृष्टि से मानव जीवन को देखने का विरोधी है। मानवीय सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि से उनका चिंतन आदर्शवादी है। लेकिन चिंतन अव्यवहारिक न बने। इसलिए उन्होंने व्यवहार्य व्यवस्थाओं का विश्लेषण भी किया है। उपाध्याय कहते हैं कि हमें पूंजीवाद एवं समाजवाद के चक्कर से मुक्त होकर मानववाद पर विचार करें। मानव जाति के सभी अंगों पर विचार करते हुए आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन, वितरण, उपभोग के साधनों का संयोजन एवं प्रबन्ध करना चाहिए। इसके लिए विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था आवश्यक है। आधुनिक लोकतन्त्र में जिसमें सदैव अतिवाद का विरोध किया है। एक ऐसे मनुष्य का निर्माण किया है जो आत्मकेन्द्रित है। पूंजीवाद जिसने हस्तक्षेप का विरोध किया। एक ऐसे आर्थिक मनुष्य का निर्माण किया है। जो पैसे का लालची है। समाजवाद शोषण का विरोध करता है। एक ऐसे मनुष्य का निर्माण किया है, जो सत्ता से ज्यादा प्यार करता है। अतः दीनदयाल उपाध्याय ने स्पष्ट कहा है कि केवल एकात्म मानववाद का हिन्दु तत्व ज्ञान ही अन्तर्विरोध को दूर कर सकता है इसलिए आधुनिक लोकतंत्र में पूंजीवाद, समाजवाद का भारतीय संस्कृति के अनुरूप भारतीयकरण करने की आवश्यकता है।

अतः भारतीय संस्कृति द्वारा दिए जाने वाले संस्कारों पर बल दिया जाना चाहिए। उपाध्याय जी का प्रमाणिक मत था कि केवल भारतीय संस्कृति और उसका प्राचीन विवेक ही ऐसी अर्थव्यवस्था का निर्माण कर सकता है जो वास्तविक आवश्यकताओं से सम्बद्ध हो।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. शरद चन्द कुलकर्णी, *एकात्म अर्थनीति,* सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, पृ0 **24–28**
2. महेश चन्द शर्मा, *दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार,* प्रभात पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1994 पृ0 **237–240**

3. पिलानी शेखावटी, *जनसंघ सम्मेलन में दीनदयाल उपाध्याय का उद्घाटन भाषण,* पाञ्चजन्य, 12 सितम्बर 1955, पृ0 **11**
4. दीनदयाल उपाध्याय, *भारतीय अर्थनीति विकास की दिशा,* राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, 1958, पृ0 **26, 30**
5. दीनदयाल उपाध्याय, एकात्म मानववाद, प्रभात पब्लिकेषन, 2016, पृ0 **120–125**
6. महेश शर्मा, दीनदयाल उपाध्याय, *सम्पूर्ण वाङ्मय,* खण्ड–5, प्रभात पब्लिकेशन, 2016, पृ0 **194–96**
7. रमेश पोखरिपाल निशंक, *प्रखर राष्ट्रभक्त एकात्म मानववाद के प्रणेता पं0 दीनदयाल उपाध्याय,* डायमंड पाकेट बुक्स, नई दिल्ली, 2019, पृ0 **229–30**
8. पं0 दीनदयाल उपाध्याय, *राष्ट्र चिंतन,* अध्याय 12 विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ 2014, पृ0 **89**
9. पं0 दीनदयाल उपाध्याय, *राष्ट्र जीवन की समस्याएं,* अध्याय 9 अर्थनीति का भारतीयकरण, राष्ट्रधर्म प्रकाशन लि0 लखनऊ, पृ0 **42**
10. महेश शर्मा, दीनदयाल उपाध्याय, सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड–3, प्रभात पब्लिकेशन, 2016, पृ0 **58**